४७ कर्म और आधुनिक विज्ञान

☐ आचार्य अनन्तप्रसाद जैन

'कर्म' का जो रूप और आत्मा के साथ सम्बन्ध के प्रारूप जो जैन सिद्धान्त ने स्थापित किए हैं, वे अत्यन्त आधुनिक विज्ञानमय हैं। जैन कर्म सिद्धान्त और आधुनिक विज्ञान में कोई विभेद नहीं है—सिवा इसके कि एक जीव–आत्मा–शरीर-धारी से सम्बन्धित है तो दूसरा प्रायोगिक, रासायनिक और भौतिक प्रभावों के समीकरणों से संयुक्त है। आधुनिक विज्ञान ने जीव-जीवन और आत्मा सम्बन्धित रिसर्च (अनुसंधान) तो बहुत किया और कर रहा है पर अभी तक किसी विशेष नतीजे पर नहीं पहुँच पाया है। जैन तीर्थंकरों ने हजारों वर्ष पहले, तपस्या (गंभीर चिन्तन) द्वारा जीवन के विषय में जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं वे वैज्ञानिक तथ्यों और प्रयोगों द्वारा अकाट्य एवं पूर्णतः समर्थित पाई जाती हैं। यदि वैज्ञानिकों ने थोड़ा भी जैन कर्म सिद्धान्त का अध्ययन किया होता या करते तो एक महान सफलता को उपलब्धि उनके खोजों और अनुसंधान (रिसर्च) में हुई होती परन्तु अफसोस यही है कि वैज्ञानिक धर्म सिद्धान्त को बकवास मानते हैं और धर्माधिकारी लोग विज्ञान को धर्मद्वेषी। यदि दोनों मिलकर काम करें तो संसार की कितनी ही विसंगतियों और समस्याओं को सुलझाने में कठिनाई नहीं रह जाय। विशेषकर जैन कर्म सिद्धान्त तो परम वैज्ञानिक है। इस ओर आधुनिक वैज्ञानिकों तथा विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने के लिए कुछ ऐसे साहित्य के सृजन की परम आवश्यकता है जिससे ऐसे लोगों में इस विषय में दिलचस्पी उत्पन्न हो सके।

विज्ञान का इलेक्ट्रन, प्रोटन, न्यूट्रन, पोजीट्रन आदि हमारे जैन कर्म सिद्धान्त के "पुद्गल परम परमाणु" ही हैं। तीर्थंकरों ने इन्हें जीव-जीवन और आत्मा से संबंधित प्रभावों को व्यक्त किया। वे तो मानव की श्रेष्ठता, उसके दुःखों का निवारण, शाश्वत आनंद और मोक्ष प्राप्ति की दिशा में ही मानसिक अनुसंधान (तपस्या या गंभीर चिंतन) द्वारा उपलब्ध तथ्यों को प्रकाश में लाने में लगे रहे। उन्होंने भौतिक या सांसारिक सभी कुछ दुःखमय पाकर त्याग करने का ही उपदेश दिया। भौतिक संसार विज्ञान में इतना अधिक उन्नति कर गया है—पर क्या सभी सुखी हो सके हैं? भौतिक समृद्धियाँ और जीवन के आयाम काफी बढ़ गए हैं। फिर भी मानव असंतुष्ट और दुखी ही पाया जाता है। भोग-विलास से क्षणिक सुख ही होता है। शाश्वत सुख तो तीर्थंकरों के बतलाए मार्ग

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर चलकर ही मिल सकता है। तीर्थंकरों ने भी साधारण मानव की भाँति जन्म लिया और अपनी साधना और सम्यक् चिंतन और आचरण द्वारा महामानव —भगवान बन गए।

विज्ञान तो आजकल महानाश—प्रलय का अग्रदूत बन गया है। विकसित कुछ बड़े देशों ने ऐसे अस्त्रशस्त्रों का निर्माण कर लिया है और करते जा रहे हैं जिनसे संसार या पृथ्वी टुकड़े-टुकड़े होकर समाप्त की जा सकती हैं। सर्वज्ञ तीर्थंकरों का कर्म-सिद्धान्त इसके ठीक विपरीत देश और संसार में तथा किसी भी समाज में सुख-शान्ति की स्थायी स्थापना कर सकता है।

जैन कर्म सिद्धान्त की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं—जिनमें मुख्य है आत्मा और पुद्गल के सम्बन्ध की विशद, विधिवत, पूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या। सभी जीवधारियों के साथ अनादिकालीन रूप से आत्मा के साथ पुद्गल (मटर) निर्मित शरीर है। शरीर हलन-चलन कार्य या कर्म का माध्यम है और आत्मा चेतना, ज्ञान और अनुभूति का माध्यम। बिना आत्मा के सभी पुद्गल शरीर निष्क्रिय और बेजान जड़ हैं। किसी शरीर में जब तक आत्मा विद्यमान रहती है वह शरीर कर्म करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे बिजली की हर प्रकार की मशीनें। बिजली की मशीन या तंत्र तरह-तरह के विभिन्न बनावटोंवाले होते हैं पर बिना बिजली के कुछ भी काम नहीं कर सकते। उसी प्रकार सभी आदमियों और जीवधारियों के शरीरों का निर्माण—बनावट भिन्न-भिन्न होती है—पर वे सभी अपने शरीरों में आत्मा रहने पर ही काम करते हैं। आत्मा के नहीं रहने पर वे मुर्दा—निष्क्रिय होते हैं। आत्मा सभी में समान है पर बनावट विभिन्न होने से उनके कार्य अलग-अलग होते हैं जैसे बिजली के यन्त्रों के।

जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार किसी जीवधारी के स्थूल शरीर के अतिरिक्त "कार्मण शरीर" और "तैजस" शरीर भी होता है। इन दोनों को हम नहीं देख सकते। इनके निर्माण करने वाले पुद्गल परमाणु और उनके संघ इतने सूक्ष्म होते हैं कि देखना संभव नहीं होता। इनमें कार्मण शरीर सबमें प्रमुख है। यही मानव या किसी भी जीवधारी के कार्यकलापों का प्रेरक नियंता या कर्ताधर्ता है। हमारा शरीर अनेकानेक रासायनिक द्रव्यों के सम्मेलन से बना हुआ है। ये रासायनिक पदार्थ, सभी के सभी, पुद्गल निर्मित होते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि आधुनिक विज्ञान के इलेक्ट्रन, प्रोटन, न्यूट्रन, पोजीट्रन आदि जैन सिद्धान्त में वर्णित "पुद्गल" हैं। चूँकि "एटम" को हिन्दी में परमाणु की संज्ञा दी गई है—इसलिए इलेक्ट्रन आदि को मैंने "परम परमाणु" कहा है। ये ही परम परमाणु "पुद्गल" हैं। पुद्गल परम परमाणु ही आपस में मिल-मिलाकर परमाणु (एटम) बनाते हैं और ये एटम (पुद्गल परमाणु) मिलकर अणु (मौलीक्यूल) बनाते हैं। जिनके मिलने से-संघबद्ध होने से,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ठोस, तरल और गैस बनते हैं। शरीर के भीतर अनेकानेक प्रकार के ये पुद्गल पिण्ड या रासायनिक संगठन हैं। इनमें सर्वदा कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। सारा वायुमंडल पुद्गल परमाणुओं से भरा हुआ है। विश्व की हरएक वस्तु, हरएक अणु-परमाणु सर्वदा कंपन-प्रकंपन युक्त हैं—जिससे हरएक वस्तु से पुद्गलों का अजस्र प्रवाह होता रहता है।

हम भोजन, पान करते हैं जिनसे भीतर रासायनिक प्रक्रियाएँ होती रहती हैं और शरीर के भीतर हर समय नए पुद्गल पिण्ड बनते रहते हैं और पुरानों में कुछ परिवर्तन होता रहता है। इन्हीं पुद्गल पिण्डों के बीज रूप पुद्गल परमाणुओं से कार्मण शरीर का निर्माण होने से उसमें भी परिवर्तन होते रहते हैं। बाहर से अनंतानंत पुद्गल परमाणु विभिन्न संगठनों में आते रहते हैं और भीतर से निकलते रहते हैं। और आपसी क्रिया-प्रक्रिया द्वारा आंतरिक पुद्गल-पिण्डों में अथवा रासायनिक संगठनों में परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ क्षणिक, कुछ अधिक समय तक रहने वाले कुछ काफी स्थायी प्रकार के नए-पुराने संगठन बनते-बिगड़ते रहते हैं। जो पुद्गल परमाणु शरीर के अंतर्गत पुद्गल पिण्डों से मिलकर—संघबद्ध होकर या रासायनिक क्रिया द्वारा स्थायी परिवर्तन कर देते हैं उन्हें जैन साहित्य में "आस्रव" नाम दिया गया है। रासायनिक क्रिया द्वारा संघबद्धता हो जाने पर उस क्रिया को "बंध" कहते हैं। ये परिवर्तन यथानुरूप "कार्मण शरीर" में भी होते रहते हैं। मानव जो कुछ भी करता, कहता या विचारता है वे सभी किसी न किसी पुद्गल पिण्ड द्वारा ही परिचालित, प्रेरित या प्रभावित होते हैं। यह "कर्म प्रकृति" कही जाती है। इनका विशद पर संक्षिप्त विवरण दो पुस्तकों से प्राप्त हो सकता है। ये हैं—हिन्दी में—**"जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य"** तथा अंग्रेजी में **"मिस्ट्रीज ऑफ लाइफ एण्ड इटर्नल ब्लिस।"**[1] इन्हें देखें। कर्म सिद्धान्त जैन वाङ्मय में बड़े ही विशाल रूप में वर्णित है यदि पुद्गल परमाणुओं का आना-जाना और आंतरिक पुद्गल पिंडों से संघबद्ध होकर "बंधादि" करना समझ में आ जाय तो फिर परम वैज्ञानिक जैन कर्म सिद्धान्त समझने में कोई कठिनाई नहीं हो और तब ज्ञान श्रुतज्ञान न रहकर वैज्ञानिक सम्यक् ज्ञान हो जाय।

यह "बंध" ही भाग्य है। जो आस्रवित पुद्गल बंध बनाते हैं उन्हें कर्म पुद्गल या संक्षेप में "कर्म" कहते हैं और ये कर्म पुद्गल कार्मण शरीर से रासायनिक क्रिया द्वारा प्रतिबन्धित हो जाते हैं। यह बंधन-प्रतिबंधन सर्वदा चलता रहता है। "कर्मों" में भी परिवर्तन होता रहता है। हमारे यहाँ आठ प्रकार के "कर्म-बंध" कहे गए हैं। जो आत्मा के आठ गुणों को आच्छादित या मर्यादित कर देते हैं। कर्म

१. पुस्तकें मिलने का पता :—तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तरप्रदेश, पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ, पिन : २२६ ००१
जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य—मूल्य रु० ३.५०
मिस्ट्रीज ऑफ लाइफ एण्ड इटर्नल ब्लिस—मूल्य रु० ७.५०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गलों का आस्रव हमारे शारीरिक, मानसिक, वाचिक हलन-चलन द्वारा होता है। आस्रव के अन्य कई कारण जैन शास्त्रों में वर्णित हैं। आस्रवित पुद्गल काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि "कषायों" और बुरी भावनाओं द्वारा "बंध" में परिणत हो जाते हैं। ये बंध कुछ क्षणिक, कुछ अर्ध स्थायी और कुछ स्थायी होते हैं। ये सभी कुछ, रासायनिक पद्धति द्वारा, शरीर से कर्म कराने की व्यवस्था करते हैं। अच्छे कर्म पिण्ड अच्छा कर्म और बुरे कर्म पिण्ड बुरा कर्म प्रभावित करते हैं। आत्मा स्वयं कुछ नहीं करता वह तो शुद्ध, बुद्ध, ज्ञानमय है। परन्तु उसकी उपस्थिति में ही कर्म होते हैं अन्यथा तो शरीर निर्जीव अचेतन, जड़ ही है।

हम जो कुछ भी करते हैं—देखते-सुनते हैं सभी कुछ पुद्गल निर्मित–पुद्गलमय होते हैं। इन्हें जैन वाङ्मय में "व्यवहार" कहा गया हैं। "**निश्चय**" तो केवलमात्र आत्मा या आत्मा में लीन हो जाना ही है। एकाग्रता से एक ही प्रकार का कर्मास्रव होता है। आत्मा में ध्यान लगाने से चिन्ता, माया, मोह आदि से निर्लिप्त होने से कर्म पुद्गलों का आगमन और बंध एकदम रुक जाता है। इतना ही नहीं पुद्गल पिण्डों में से पुद्गल परमाणु निःसृत होते हैं। उनसे कर्मों की "निर्जरा" भी होती है। जिससे आत्मा की शुद्धता, कर्मों या कर्म पुद्गलों से छुटकारा मिलने से बढ़ती है।

अनंतकालिक परंपरा से चले आते कौटुम्बिक अथवा सामाजिक प्रचलनों में फंसे लोग "अज्ञान" में ही पड़े रहकर सच्चे ज्ञान और सच्चे धर्म की शिक्षा की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। इसके लिए सभी को षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नवपदार्थ—जैसा जैन सिद्धान्त में वर्णित है, उसकी जानकारी आवश्यक है। पर जैन सिद्धान्तों का तीव्र विरोध स्वार्थी लोगों ने इतना फैला रखा है कि इनका ज्ञान विरले लोगों को ही हो पाता है। जैन समाज भी इन तत्त्वों का प्रचार-प्रसार उचित रीति से नहीं करता, इससे संसार अव्यवस्था, अनीति और अनाचार एवं दुःखों से भरा हुआ है। सरल भाषा में सरल शब्दावली लिए यदि जैनदर्शन और सिद्धान्त की पुस्तकें लिखकर सस्ते दामों में प्रचारित की जाएं तो संसार का बड़ा भला हो। अभी तो हमारे श्रीमंत, पंडित, और गुरु मुनि लोगों का ध्यान इधर गया ही नहीं तो क्या हो? जैन समाज को जैन तत्त्वों के प्रचार-प्रसार पर मंदिर-निर्माण से अधिक खर्च करना चाहिए। इसी से सबका सच्चा भला होगा। जैन मंदिरों और संस्थाओं में तो रुपया बहुत इकट्ठा है पर उस धन का सदुपयोग नहीं हो पाता। प्रति वर्ष मूर्ति प्रतिष्ठा, कल्याणक महोत्सव आदि समारोहों पर लाखों रुपया इकट्ठा होता है, पर क्या इन रुपयों का एक फीसदी भी तत्त्व-ज्ञान के प्रचार-प्रसार में खर्च होगा? यदि यह धन ईंट, पत्थर, मंदिर, मूर्ति तथा इमारतों में न लगाकर प्रचार में उचित रीति से खर्च किया जाय तो समाज, देश, विश्व और मानवता का कितना भला हो!

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org